बाजारवाद और महिला लेखन

* डॉ. धनवन्ती दाधीच

बाजारवाद आर्थिक उदारीकरण या मुक्त बाजार व्यवस्था की देन है। भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण की अंधी दौड़ में आज देश एक बाजार बन गया है। बाजारवाद की सन्तति है, उपभोक्तावाद। उपभोक्तावाद का प्रेरक माध्यम बना विज्ञापन। विज्ञापन का संबंध भाषा से है। वस्तु विज्ञापन से भाषा बदलती है। वह भी विज्ञापन व बाजार की मांग के अनुरूप संस्कृति से वस्तु में बदल जाती है। इस प्रकार बाजारवाद उपभोक्तावाद के माध्यम से विचार एवं संस्कृति को वस्तु या कमोडिटी में बदल देता है। उपभोक्तावाद के बाजार में आज विचार, ज्ञान, सूचना और यहाँ तक कि मानव मूल्य भी बिक रहे हैं। भारत में वैदिककाल में कहीं स्वतंत्र विचारक ऋषिकाएँ हुईं। मंत्रकाल तक तो '**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता**' की स्थिति बनी रही, किन्तु स्मृति काल तक आते-आते 'नारी स्वातंत्र्य नार्हति[१]' की हीन दशा को प्राप्त हो गई। मध्यकाल में वह देहमात्र होकर वस्तु बन गई। यानी मात्र उपभोग्या। आज बाजारवाद बनाम उपभोक्तावाद ने एक बार फिर मध्यकाल की पुनरावृत्ति करदी है। बाजारवाद ने परिवार, समाज, मानव मूल्य एवं उनकी धुरी नारी को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इससे इनका ढांचा चरमरा गया है। जिससे अनेक समस्यायें जन्मी हैं। बाजारवाद से आशय बाजारु प्रवृत्ति से है। स्त्रियों से आदर्श-पत्नीव्रत की अपेक्षा रखी जाती है, किन्तु पुरुषों के लिए पत्नीव्रत होना आवश्यक नहीं।

कहीं न कहीं बाजारवाद का आशय आधुनिकता से है, जिसके कारण पुराने ढंग के परिवार ढहे हैं। पुराने मूल्य और पुरानी मान्यतायें ढही हैं। इन सबने कई समस्याओं का भी जन्म दिया है। दूसरे शब्दों में बाजारवाद का सीधा दुष्प्रभाव परिवार, रिश्ते और जीवन मूल्यों पर पड़ा है और नारी उनसे प्रभावित हुई है। हमारी परम्परा में पारिवारिक मूल्यों की रक्षा के अंतर्गत उसके द्वारा किए गए त्याग की अहम भूमिका थी। लेकिन बाजारवाद के प्रभाव ने उस त्याग को सिर्फ महिमामंडन का जामा पहना दिया और यह भी कहा जाने लगा कि यह महिमामंडन तो सिर्फ सांस्कृतिक आयाम देने के लिए किया जाता रहा है। वास्तव में वे उपेक्षा, उत्पीड़न, शक और अपमान की पात्र रही हैं। परम्परा का केंचुल उतारती नयी मान्यताएँ, परम्परायें और स्थापनायें स्पष्ट हो रही हैं। परम्परायें पूरी तरह समाप्त हो चुकी हैं - ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि आज भी स्त्री परम्परा के बंधन से पूरी तरह मुक्त नहीं है। वर्तमान नारी विमर्श समाज से इसी स्वतंत्रता की मांग करता है। उसे भी पुरुष की तरह ही अपनी इच्छाओं और लालसाओं को पूरा करने का अधिकार मिले। कृष्णा सोबती ने बदलते सामाजिक परिवेश में औरत की बदलती हुई स्थिति और उसके संघर्षों पर अत्यन्त बारीक नजर रखी है। कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारी विमर्श के स्वरूप को समझने की दृष्टि से सर्वधिक महत्त्वपूर्ण कृति है 'मित्रो मरजानी'। 'मित्रो मरजानी' में सोबतीजी की सबसे बड़ी उपलब्धि है, मित्रो जैसी पात्र की स्थापना। हिंदी उपन्यास की परम्परा में मित्रों जैसा दूसरा चरित्र ढूंढे नहीं मिलता, जो अपनी पूरी सहजता के साथ बेलौस, बेलगाम और युर्घर्ष है। इस पात्र को गढ़ने में कृष्णा सोबती का आत्मीय लगाव भी दिखता है। मित्रो को मरजानी कहना शायद इसी आत्मीयता के कारण है। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का भी मानना है कि हिन्दी में उस जैसी स्त्री का प्रवेश पहली बार हुआ। कृष्णा सोबती ने ऐसे भरपूर पात्र को केन्द्र में रखकर यह कहानी लिखी यह नई बात है। इसके लिए बहुत साहस, निर्ममता की जरूरत पड़ी होगी। यह सब आत्मीय परिचय पात्र से तादात्म्य के बिना संभव नहीं था।

मित्रो अपनी देवरानी के झूठे-नाज नखरों पर पत्थर उछालती है। शाबास देवरानी, शाबास। इस चिट्ठे सिर वाली की तुमने अच्छी बात की है, पर इतना जान लो, मैं तो तेरे मर्द की मां होती, तो रानी इस पिदके से सिर पर एक बाल न रहने देती।[२] नैतिक प्रतिमानों का कोई बंधन मित्रों को बांध नहीं पाता। वह अपनी ही जिंदगी जीती है। यही उसकी सहजता है। उसके अनोखेपन का सबसे बड़ा कारण, पर इस अनोखेपन में भी पति की सलामती का पारंपरिक जज्बा मित्रों के चरित्र का सबसे उजला पक्ष है। पति से मार कुटाई करने वाली मित्रो जो कि अपनी मां के यार के साथ अपनी वासना शांत करने के लिए भी तैयार हो जाती है। पति पर मां की कुदृष्टि देख सहम जाती है - तू सिद्ध भैरवी की चेली, जब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी ? सो न होगा बीबी कहे देती हूँ। डार से बिछुड़ी की पाशा स्त्री जीवन के समक्ष जन्म से ही मौजूद खतरों और विडम्बनाओं को रेखांकित करती है। पाँव थिरकने पर जिंदगानी धूल में मिल जाने का खतरा पाशो उठाती है और सचमुच डार से बिछुड़ी की तरह ठौर दर ठौर भटकती रह जाती है। औरत की छुई-मुई सी जिंदगानी के त्रासद भटकाव की अंतर्यात्रा है, डार से बिछुड़ी। हर ठौर औरत के जीने और जागने पर कितने खतरे हैं, पाशो का भटकाव इसका प्रमाण है। सच तो यह है कि पाशो को अपनी मां के थिरके पांव का भी हिसाब भरना है। इसीलिए मरन जोगी, नास होनी, कुलच्छनी, कालिखपुती और करमजली कहीं तथा समझी जाने वाली पाश्ते भी अपनी मामुओं का घर शेखों की हवेली की ओर निकल जाती है। अपनी मां से मिलने के लिए या कि अपनी डार से जुड़ने के लिए डार से जुड़ने की ललक में वह जुड़ती तो नहीं, भटक जरूर जाती है और एक यातनाचक्र भोगती है। फिर भी कृष्ण सोबती की, इस आगामी स्त्री की जिसके जीने के लेख ही बिसर गए, समाज के लिए यही मंगल कामना है कि जिएं जागें सब जिएं जागें। 'सूरजमुखी अंधेरे' के एक ऐसी लड़की की व्यथा है, जो कभी लड़की नहीं थी। एक औरत जो कभी औरत नहीं थी, जिसने कभी-कभी किसो को नहीं पाया और जिसको कभी किसी ने नहीं। बलात्कार ने बचपन में ही जिसके स्त्रीत्व को असमय चाक कर दिया और बना दिया एक सड़क। जिसका कोई किनारा नहीं। आप ही अपनी सड़क का डैड एंड। उपन्यास की नायिका भी अपने फटेहाल बचपन को लेकर अंदर और बाहर दोनों से लड़ती है, दुश्मनों की तरह। रत्ती में पाने का भाव है ही नहीं, क्योंकि खोने का दंश इतना गहरा है कि और कुछ के लिए जगह ही नहीं। मैं तो खोने को जानती हूँ, पाने की पहचान ही नहीं रही। रत्ती और मित्रो दोनों के परिवेश अलग-अलग हैं, किन्तु दोनों ही प्रतिध्रुवस्थ दिखाई पड़ती हैं। मित्रो पारम्परिक घरेलू ग्रामीण परिवार की नारी है तो रत्ती एक शिक्षित आधुनिका। एक में काम की होंस इस कदर व्याप्त है कि मछली सी तड़पन तो दूसरी ओर प्रिजिडिटी का शिकार। एक में पाने की जबरदस्त ललक है और सब कुछ खोने को तैयार तो दूसरी में खोने का दंश गहरा और पाने का भाव शून्य है। एक का संघर्ष केवल बाहर से व्याप्त तो दूसरी अंदर और बाहर दोनों से लड़ती है। इन मित्रताओं के बावजूद दोनों का संघर्ष अपने अस्तित्व के लिए ही है। अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने के लिए रत्ती अपनी यात्रा में एक के बाद एक सोलह पुरुषों से गुजरती है, किन्तु बार-बार उसे यही लगता है कि स्त्री कोई औरत नहीं, वह सिर्फ गीली लकड़ी है। जब भी जलेगी, धुंआ देगी, सिर्फ धुंआ। अपने को पूरा करने के लिए रत्ती एक लंबी लड़ाई लड़ती है। हर बार बाजी हार जाने वाली और हर बाद हार न मानने वाली। अकेले

महारानी कॉलेज, हिन्दी विभाग, राज. विश्व विद्यालय जयपुर (राज.)

जूझते हुए, हर बार सिर उठा आगे उसे इंतजार है। रत्ती की इच्छा दिवाकर तक पहुँचकर पूरी होती है, जब उसमें मातृत्व की चाह हिलोरें मारती है। सपाट पठारों के बीच तंग दर्रे में रत्ती का खोया चमचमाता मोती दिवाकर के पास मिलता है और तब रत्तिका शोखी से धरती बन जाती है, बीहड़ों में छोटा सा गाछ उगाने के लिए। प्रेम के स्वीकार अस्वीकार का हम केवल इसीलिए श्रीदा के द्वारा ठुकराए जाने पर वह उनका और उनके घर दोनों का त्याग कर देती है। जया का पराजय बोध उसके अंदर तक चलता है। दार्जीलिंग में तपन के निकट आ उसकी ग्रंथि टूटती है और आत्मविश्वास जाग उठता है। किन्तु वहाँ भी जया, तपन और पुत्तुल के बीच आ निरर्थक जीवन जीना नहीं चाहती।

'बदली बरस गई' स्त्री जीवन के तन-मन के अभाव में अपनी शून्यता का दस्तावेज है। स्त्री जीवन में तन और मन दोनों के ही कुछ सहज धर्म, आवश्यकतायें और सम्भावनाएँ होती हैं। तन मन में एक न होने की दशा में कितनी रिक्तता और व्यर्थता का बोध होता है। कल्याणी का जीवन इसका प्रभाव है। गौरी साध्वी पति के रहने पर उसे केवल तन से जान सकी, मन से नहीं। इसीलिए मन की रिक्ति को वह भगवत भजन से भरती है। दूसरी ओर कल्याणी युवा स्त्री है, जिसके तन और मन दोनों में ही बादल घुमड़ रहे हैं। आश्रय की एकरसता में उसके सूख जाने का खतरा है, इसीलिए वह घर जाने का निर्णय लेती है। आश्रम के जोगिया वस्त्र उस पर नियंत्रण नहीं कर पाते। साधना और संयम के लंबे वर्षों के बावजूद स्वयं साध्वी-गौरी के मन पर भी काली बदली घिर आती है, जो पुत्री के आघात से बरस पड़ती है। सोबतीजी ने यहाँ बदली का प्रतीक लेकर स्त्री मन और देह में स्वाभाविक धर्म को प्रतिष्ठित किया है। कृष्णा सोबती के इन सभी नारी पात्रों से गुजरना स्त्री मन के गहरे अतल में झांक लेने जैसा है, जहाँ सब कुछ देख और जान लेने का दावा करना मिथ्या होगा। किन्तु स्त्री मन में चलने वाले तनाव और घुटन की पूरी झलक अवश्य मिल जाती है। स्वयं एक स्त्री होने के नाते उन्होंने इस तनाव के वास्तविक कारणों को पकड़ने का साहस किया है। समाज में औरत के दोयम दर्जे सा सबसे बड़ा कारण है, उसका आत्मन बन पाना। उनकी वर्गीय स्थिति चाहे कुछ भी हो, वे पुरुष की कामना के उपकरण सफलता के उपादान मात्र हैं। सोबतीजी के नारी पात्र इसी सामाजिक स्थिति का विरोध करते हैं। इसीलिए वे कहीं-कहीं आक्रामक और विरोधी जान पड़ते हैं। इसके बाद भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं कि परम्परा और नैतिक मानदण्डों को तोड़ते, ध्वस्त करते उनके नारी पात्र अंततः स्त्री देह और मन के सहज धर्म को ही स्थापित करते हैं। प्रेम समर्पण त्याग और यौनभाव मातृत्व सभी उसमें गहरे से समाए हैं। इन सबको देने और पाने की गहरी चाह भी उनके भीतर है, लेकिन आत्म की प्रतिष्ठा के साथ। कुल मिलाकर यहाँ स्त्री विमर्श परिस्थिति और परिवेश के तनाव से उपजता है। संघर्षों और चुनौतियों की शक्ल में यह उस व्यवस्था से विरोध दर्ज कराता है, जो आधे अधूरे सच को लेकर सांसे ले रहा है। बाजारवाद से आशय अलग-अलग खेमों से भी लिया जा सकता है। आज अलग-अलग विचारधारायें अपनी ओर खींच रही हैं। सूरदास ने मध्यकाल में बाजारवाद का संकेत किया है। उद्धव नागर संस्कृति का प्रतीक बनकर आता है और ग्रामीण संस्कृति को छोड़ने की सलाह देता है। उद्धव बाजारवाद के एजेन्ट बनकर ज्ञान का व्यापार करने, ज्ञान को वस्तु के रूप में ही प्रस्तुत करता है। ज्ञान को कमोडिटी बनाकर उसका व्यापार करने गोकुलगांव में आते हैं और भोले ग्रामीणों को उसमें फँसाने की कोशिश करते हैं। उसकी चालाकी भांपकर गोपिकायें उस पर तीखा कटाक्ष करती हैं, आयो घोष बड़ो व्यापारी।

लादी खेप ज्ञान की, ब्रज में आय उतारी।[३]

जैस आज बाजारवाद की प्रेरणा से सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, माडलिंग, फिल्मों विज्ञापनों आदि के नाम पर नारी को निर्वस्त्र करने की कवायद चल रही है और वह भी उसकी स्वतंत्रता और आर्थिक स्वावलम्बन के नाम पर। ठीक वैसे ही उद्धव भी भोग के नाम पर गोपिकाओं को योग अपनाने की सलाह देता है तो गोपिकायें उसकी बाजारवादी नियत को भांपकर उसे खरी खोटी सुनाती हुई कहती हैं कि क्या योग के नाम पर तुम नारी जाति को निर्वस्त्र करके वन जाने की सलाह देती हो। इस प्रकार गोपिकायें नारी शील को बेपरदा करने वाले उसके प्रस्ताव को खारिज कर देती है। क्या आज का शिक्षित नारी समाज उपभोक्तावाद के इस परिवेश में ऐसा क्रान्तिकारी कदम उठाने में समर्थ है। इस बाजारवाद का प्रभाव महिला लेखिकाओं के साहित्य में भी मिलता है। महिला लेखिकाओं ने नारी की जो व्यथा कथा लिखी है, क्योंकि वे स्वयं कहीं न कहीं उस पीड़ा के दंश को झेल चुकी होती है। इसीलिए उनके लेखन में अनुभूति की प्रामाणिकता अधिक मिलती है। इसलिए महिला लेखन में उपभोक्तावाद जन्य समस्याओं का ज्यादा मार्मिक और ज्यादा प्रामाणिक चित्रण मिलताहै। सामाजिक मूल्य परिवर्तनशील होते हैं, जब सामाजिक विकास में पुराने मूल्य बाधक सिद्ध होने लगते हैं, तब क्रमशः टूटन का सिलसिला आरम्भ हो जाता है। नए मूल्य धीरे-धीरे समाज के विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। समाज में स्वीकृत होकर ही प्रासंगिक मूल्य अभिव्यक्त होते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में विविध आन्दोलनों का उद्भव और उनके अस्त के पीछे नए-नए जीवन मूल्यों को स्वीकृत कराने की ही लालसा है। अकहानी आन्दोलन परम्परित मूल्यों से मुक्ति का आंदोलन बनकर आया। जिसके परिणामस्वरूप अकहानी मूल्यों के नाम पर आराजक और अश्लील गद्य बन गई। जिसके फलस्वरूप अकहानी मूल्यों के नाम पर आराजक और अश्लील गद्य बन गई। स्त्री पुरुषों के बीच संबंधों की पवित्रता प्रेम की भावनात्मक उदात्तता अश्लीलता और कामुकता के आगे धाराशायी हो गई। कृष्णा सोबती के लेखन का ढंग बेधड़क था, जिससे अंगरेजी में बोल्डनेस कहा गया। कृष्णाजी की मित्रो भी देहरस को पूरी तरह जीती है और जिंदगी नामा में भी वही देह रस खूब है। इन कहानियों में उनकी दृष्टि नारी देह पर ही केन्द्रित रहती है, जिस देह को पुरुष अपनी आंखों से देखने के लिए तरसता है, उसी नारी देह को कृष्णा सोबती ने सरे आम नंगा कर दिया है।

महिला लेखन में व्यंजित अश्लीलता किसी भी कोण से वरेण्य नहीं है। बाजारवाद के मूल में पुरुष के शोषण का विरोध था। लेकिन अपने छिछोरेपन और यौन उन्मुक्तता के कारण भटकाव का शिकार हो गया। वर्तमान और भावी पीढ़ियों को यदि महिला कथा लेखन कोई मूल्य या मर्यादा नहीं दे सके तो ऐसे बाजारवाद से प्रभावित लेखन का क्या औचित्य है, यह विचारणीय प्रश्न है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाजारवाद ने वैश्वीकरण के साथ मिलकर भारतीय जन जीवन एवं जीवन मूल्यों का जो घमासान किया उसमें व्यक्ति परिवार रिश्ते एवं मानव मूल्य, सबके सब बाजारवाद के बाजार में जिन्स बनकर रह गये हैं। महिला लेखिकायें नए पन से स्वयं को लाभकारी हासिल करने की झोंक में बाजारवाद की शिकार हो गई। फलतः उनके लेखन में नारी मुक्ति का जो गरिमामय रूप उभर कर सामने आना चाहिए था, उसके स्थान पर नारी देह के ऐसे कामुक एवं अश्लील रूप सामने आये, जिन्होंने जीवन मूल्यों की तो धज्जियाँ उड़ाई हीं, साथ ही नारी को पुरुष के विरोध में खड़ा करके परिवार एवं समाज में वैमनस्य की खाई तैयार कर दी। कदाचित् यह महिला लेखिकाओं के लिए बाजार में अपने आपको चर्चित एवं विज्ञापित करने का रहा होगा। अलबत्ता इससे नारी मुक्ति का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। नारी आंतरिक रूप से वैचारिक दृष्टि से सशक्त होने के स्थान पर शारीरिक नुमाइश के माध्यम से यौन हिंसा का ग्रास बनती चली गई।

संदर्भ ग्रंथ

१. मनुस्मृति याज्ञवल्क्य, २. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, ३. भ्रमरगीत, सूरदास